REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 7 | ISSUE - 10 | JULY - 2018

नाटककार मोहन राकेश : एक परिचय

प्रा.डॉ. गंगाधर धुळप्पा बिराजदार
हिंदी विभाग प्रमुख,
दयानंद कला व शास्त्र महाविदयालय, सोलापूर.

प्रस्तावना :

मोहन राकेश का जन्म 8 जनवरी 1925 को अमृतसर में हुआ था। इनका वास्तविक नाम मदनमोहन गोगलानी था। राकेश को जन्म के समय परिवार में जो परिवेश प्राप्त हुआ वह प्रभावपूर्ण और संतोषप्रद भी नहीं था। इनका परिवार एक आदर्श के ढॉचे में ढला हुआ परिवार था। यद्यपि राकेश के पिता वकील थे, तथापि वे संस्कृत साहित्य में विशेष रूचि और योग्यता रखते थे। राकेश की अल्पायु में ही उनके पिता का देहांत हो गया। पिता की मृत्यू होने पर मॉ–बहन और एक छोटे भाई का दायित्व राकेश पर ही आ पडा। दुर्भाग्य से यह वह समय था जबकि घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। वह कितनी खराब थी, उसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि मकान मालिक के लडके ने मूर्दा तभी उठने दिया, जबकि उसका किराया अदा कर दिया गया। एक ओर परिवार आर्थिक विपन्नता के भार से दबता जा रहा था और दूसरी ओर इस परिवार का भार हल्का करने की किसी को फुर्सत नहीं थी। राकेश धीरे–धीरे बाल केलियों की सीमा को पार करते हुए किशोर बन गए । जिस घर में राकेश का प्रारंभिक जीवन व्यतीत हुआ वह सीलन से भरा हुआ तथा बदबूदार नालियों से घिरा रहता था। घर मे अक्सर स्त्रियों में झगडा होता रहता। घर के वातावरण में राकेश का दम घुटता था, उसे घर से बाहर जाने की मनाही थी, किंतु घर में रहने पर वे बीमार हो जाते थे। इसी तरह के आर्थिक प्रभावों एवं अप्रिय वातावरण में राकेश का जीवन व्यतीत हुआ।

उस काल में राकेश के मन में अपने आसपास के लोगों एवं परिवेश को लेकर अनेक प्रश्न उठा करते थे। उन्हें अपने में एक मतिभ्रम–सा लगता था। मन में बहुत हलचल रहती। सोचता कि क्यों नहीं लोग ऊपर की झिल्लियॉ उतारकर बात करते हैं ? क्यों जान–बुझकर अपना ही निषेध करते हैं ? कौन–सी विवशता है कि जो उन्हें झूठ बोलने व दिखावा करने तथा वास्तविकता को छिपाने के लिए मजबूर करती है।

राकेश को जिस परिवेश में सॉस लेनी पडी थी, उसे जिज्ञासावश उन्होंने निकट से देखा था और यहीं से उनके मन के किसी कोने में यह भाव भर गया कि दुनिया को निकट से देखो और उसे अपने ढंग से मन से जीने की कोशिश करो।

राकेश की दादी मॉ उनके लिए शरणस्थल थी। उनकी गोद एक ऐसा आश्रय थी, जहॉ पहुँचने पर सारे भय, भ्रम और प्रश्न दूर भाग जाते थे। जहॉ तक उनके माता–पिता का प्रश्न है, वे भी एक परंपरावादी परिवार के व्यक्ति थे। इस प्रकार राकेश को जिस पारिवारिक परिवेश में बडा होने का अवसर मिला, वह एक साधारण ऋण–भार से ग्रस्त और अपनी दुर्बलताओं में भी अनेक विशेषताओं से युक्त परिवार था।

राकेश अपने प्रारंभिक जीवन में ही ऐसा बहुत कुछ देख चुके थे कि उनके भीतर वस्तुओं को समझने की सूक्ष्म दृष्टि का विकास हो चुका था। इसी कारण कभी–कभार उनके संबंध में यह भी कहा जाता रहा कि "यह लडका जिस तरह एक–एक चीज को देखता है, घूरता है, उससे लगता है बडा होकर डाकू बनेगा।"

राकेश का परिवार यद्यपि कर्ज में डूबा रहा किंतु फिर भी उन्होंने शिक्षा पूरी पांई। वे पढते तो रहे किंतु यह भी अनुभव करते रहे कि – "निहालसिंह का कर्ज बडा है और उससे दुश्मनी भी।" यह निहालसिंह और

पंडीत लोकनाथ वे व्यक्ति थे, जिनसे कर्ज लिया गया था। ये दोनों राकेश माता–पिता नित्य प्रति तंग करते थे। तभी तो घर में सारे परिवारजनों के मन में निहालसिंह और पंडित लोकनाथ का डर बना रहता था। घर में कोई अच्छी चीज आती तो लोगों के सामने खाने–पहनने की मनाही रहती।

अच्छे कपडे भी उन लोगों की आहट पाकर चारपाईयों के नीचे छिपा दिए जाते थे। इस प्रकार ऋण–भार से ग्रस्त परिवार में भी राकेश की शिक्षा पूरी हुई और उन्होंने अपनी शिक्षा की पूर्ति लाहौर और अमृतसर में की। यद्यपि राकेश 19 वर्ष की उम्र में बहुत अधिक विद्रोही हो गए थे, किंतु फिर भी एक कलाकार का मन लेकर वे अपनी तमाम अस्थिरता और आक्रोशी वृत्ति पर काबू पाकर एम.ए. करने के लिए लाहौर चले गए। राकेश ने न केवल हिंदी में एम.ए. किया अपितु संस्कृत में भी उसी रूचि के साथ एम.ए. पूरा किया। राकेश का दुर्भाग्य यह है कि 16 वर्ष की अवस्था में ही वे पिता से वंचित हो गए। यहीं से उनका मन अध्ययनरत रहते हुए भी एक अस्थिर चित्त से भर उठा और वे सारा दिन 'बार' और 'रेस्तरॉं' में व्यतीत करने लगे। इतना ही नही 'टयूशन' और 'स्टाइपैंड' से प्राप्त पैसों के खर्च हो जाने पर कर्ज लेकर काम चलाने लगे। इस समय वे यथार्थ की टकराहट को झेलने के लिए विवश थे। वह बाईस साल की उम्र में ही बुजुर्ग अनुभव करने लगे थे तथा लेखन द्वारा अपने लिए एक रास्ता तलाशने लगे थे।

पंजाब विश्वविद्यालय से हिंदी और संस्कृत में एम.ए. करने के पश्चात 1949 में वह डी.ए.वी कॉलेज जालंधर में प्राध्यापक हो गए। वे कभी भी उन बातों से समझौता नहीं कर सके, जिन्हें वे गलत समझते थे। इसी कारण उन्होंने अपनी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। कुछ समय तक शिमला के विशप काटन स्कूल में नौकरी की, किंतु वहॉ भी उसी कारण नौकरी छोडनी पडी। पुनः डी.ए.वी. कॉलेज में हिंदी विभाग अध्यक्ष के रूप में नियुक्त हुए, फिर शीघ्र ही त्यागपत्र देकर स्वतंत्र रूप से, लेखन द्वारा जीवन–निर्वाह का निश्चय किया। वह सन 1962–63 में हिंदी कहानियों की प्रमुख पत्रिका 'सारिका' के संपादक रहे। सन 1971 में फिल्म वित्त निगम के सदस्य बने। 3 दिसंबर 1972 को अचानक उनका हृदयगति रूक जाने से दहावसान हो गया। वह अपने पीछे आश्रिता अनिता तथा ढाई और पॉच वर्ष के दो बच्चे–शालीन और पुरवा को शोक–विहवल छोड गए । राकेश का जीवन आदयोपांत अस्थिर और अनिर्णित रहा। वे अपने कार्य–क्षेत्र में कहीं भी समायोजन नहीं कर सके। वस्तुतः पद–त्याग और पत्नी त्याग की प्रक्रिया राकेश के जीवन में समानांतर भाव से चलती रही। राकेश का वैवाहिक जीवन भी दिलचस्प है। उन्होंने अपने जीवन में तीन विवाह किए – सुशिला, पुष्पा और अनिता से। इसी कारण उनमें भटकन, टूटन और बिखराव की मात्रा अधिक है। अतः राकेश के व्यक्तित्व का यह पहलू उनके अन्यान्य पात्रो में प्रतिबिंबित दिखाई देता है।

कृतित्व –

मोहन राकेश ने अपन्यांस कहानी, नाटक, एकांकि निबंध यात्र, संस्मरण डायरी, आलोचना आदि विधाओं को अपनाया। उनके तीन उपन्यांस है – अंधेरे बंद कमरे, न आनेवाला कल, अंतराल। उनके पॉच कहानी संग्रह है – इन्सान के खंडहर, नये बादल, जानवर और जानवर, एक और जिंदगी, फौलाद का आकाश। उनके चार नाटक है – आषाढ का एक दिन, लहरों के राजहंस, आधे–अधूरे, पैर तले की जमीन। उनके दो एकांकी संग्रह है – अंडे के छिलके, रात बीतने तक और उनके तीन निंबध संग्रह है – परिवेश, बकलम खुद और मोहन राकेशः साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि।

उपरोक्त साहित्य में उनका नाटककार का रूप सर्वश्रेष्ठ रहा है। उन्होंने इस बात का प्रयत्न किया कि नाटक सीधे रंगमंच से जुडे और इस कार्य में उन्हें अधिक सफलता मिली है। 'आषाढ का एक दिन' नाटक महाकवि कालिदास को लेकर रचा गया है। वह कालिदास के सर्जनशील व्यक्तित्व का विश्लेषण करता है। यहॉ नाटककार का उद्देश्य कालिदास के माध्यम से एक ऐसे सर्जक चित्र प्रस्तुत करना है, जिसके अपने व्दंव्द होते हैं। महाकवि की कथा कहना नाटक का उद्देश्य नहीं है। एक कवि को प्रतीक रूप में व्याख्यायित करना राकेश का प्रमुख आशय प्रतीत होता है। इसलिए ऐतिहासिक पात्रों के साथ यहॉ कल्पित पात्र भी हैं, जो पुराने पात्र हैं जैसे कालिदास आदि। उन्हें भी आज की पृष्ठभूमि में रखकर देखा गया है।

'लहरों के राजहंस' मोहन राकेश का दूसरा नाटक है। इसमें स्त्री–पुरूष संबंधों का विश्लेषण ऐतिहासिक कथा के माध्यम से किया गया है। नाटक के प्रथम अंक में ही कामोत्सव का आयोजन है, वह उसके ऐतिहासिक – सांस्कृतिक पक्ष को स्पष्ट करता है। इस नाटक का कथानक संक्षिप्त है और नाटककार का मुख्य उद्देश्य सुंदरी के अंतर्व्दव्द का चित्रण है, जो बुध्ददेव को अपने ढंग से चुनौती देती है।

'आधे–अधूरे' इस अर्थ में भिन्न प्रकार का है कि इसका फलक सामाजिक है। इसमें एक मध्यवर्ग के पारिवारिक विघटन की कहानी है। इस नाटक में सावित्री अपनी जिंदगी के अधूरेपन को, बिखरे हुए परिवार को फिर से समेटने की कोशिश मे खुद बिखर जाती है। यहॉ मानव की खंडीत अधूरी जीवन प्रक्रिया अंकित है। यह नाटक आधुनिक नारी की आकांक्षा और दायित्व से भरी मार्मिक त्रासदी है।

'पैर तले का जमीन' राकेश का अंतिम नाटक है, तो अधूरा रह गया था और जिसे उनकी मृत्यू के बाद उनके मित्र कमलेश्वर ने पूरा किया। यह नाटक मृत्यू के त्रासद, भयावह और पीडक क्षणों की अनुभूतियों को यथार्थ के शिल्प में ढालकर प्रस्तुत करनेवाला है। इसकी मूल चिंतनधारा अस्तित्ववादी है।

संक्षेप में यह कह सकते हैं कि राकेश का नाटय साहित्य आधुनिक बोध से संपृक्त है। राकेश ने पुरानी जमीन तोडी है, चिंतन के नए तेवर अपनाए हैं तथा शैल्पिक दृष्टि से नए मानक प्रस्तुत किए हैं। उनके नाटक जीवन की स्वीकृति है, अभिनय के लिए किए गए सार्थक प्रयोग है। राकेश के नाटकों में जीवन का यथार्थ प्रतिबिंबित है और उसके लिए अपनाई गई भाषा शैली दमदार, तीखी, हृदय के भीतरी स्तरों पर अंकित होनेवाली भाषा है। स्वातंत्र्योत्तर नाट्य–सृजन में राकेश के नाटकों का स्थान उच्च शिखर पर है और उन्होंने हिंदी नाट्यसृष्टि को गौरव प्रदान कर दिया है।

1) मोहन राकेश और उनके नाटक – गिरीश रस्तोगी
2) हिंदी रंगादोलन के संदर्भ में मोहन राकेश के नाटको का योगदान – जयदेव तनेजा
3) आधुनिक नाटक के अग्रदूत : मोहन राकेश – गोविंद यातक
4) मोहन राकेश : रंग – शिल्प और प्रदर्शन – जयदेव तनेजा
5) आधुनिक हिंदी नाटक और रंगमंच – नेमिचंद्र जैन
6) आज का हिंदी नाटक : प्रगति और प्रभाव – दशरथ ओझा
7) समकालीन नाटक की संघर्ष चेतना गिरीश रस्तोगी